पेरिस
दिसम्बर ३, २००६

सन्देश संख्या १०७

मनुष्य की सहजावस्था में धार्मिक प्रदूषणों का आरोपण (बुल्गारिया की वितोषा पहाड़ियों पर सितम्बर २००६ के दूसरे सप्ताह में हुए क्रियायोग रिट्रीट के उद्घाटन अवसर पर)

शिवेन्दु के शरीर में जीवन्त सजगता की गतिशीलता अर्थात् प्रत्यक्षबोध की क्रिया प्रायः विचारों की जीवनरहित एवं यान्त्रिक प्रतिक्रिया से मुक्त होती है । यह मुक्ति शून्यता है जो असीम शान्ति लाती है और वहाँ कोई भी उत्तेजना नहीं होती । इसी कारण यह वक्ता इस उद्घाटन के अवसर पर बोलने के लिए कोई विषय खोजने में असमर्थ है । यह वक्ता किसी को प्रभावित करने की न कोई इच्छा रखता है और न ही किसी को प्रभावित करने हेतु कोई प्रचार करता है। वह श्रोताओं के साथ उधारी मानसिक प्रदूषणों से मुक्त केवल गहरी एवं प्रत्यक्ष समझदारी को साझा करना चाहता है । वह केवल एक दर्पण दिखाता है ताकि एक श्रोता अपने अन्दर की भ्रांति एवं अशान्ति को देख सके। संयोग से, संयोजक द्वारा यह विषय सुझाया गया है । वस्तुतः यह एक गंभीर विषय है और यदि हम अपने पूरे अस्तित्व से इसका श्रवण करें तो आने वाली पीढ़ी को ईश्वर के नाम पर मिलने वाले मानसिक प्रदूषण, अपराधबोध तथा अपराधबोधग्रस्तता से बचाया जा सकता है ।

येन केन प्रकारेण शक्ति, सम्पत्ति, पद एवं प्रभुता पाने हेतु राजनीति के गन्दे धन्धे के लिए तथा एक दुष्ट एवं अशिष्ट राजनीतिज्ञ को चुनने के लिए समाज ने कुछ हद तक परिपक्व समझदारी को सुनिश्चित करने के लिए न्यूनतम आयु १८ वर्ष रखी है । किन्तु धर्म, भगवत्ता, गहरी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि जैसी पवित्र प्रक्रियाओं के लिए किसी तरह की समझदारी की आवश्यकता का विधान नहीं है । मनुष्य को इन गहन बातों की समझ के लिए कब योग्य समझा जाना चाहिए, इस प्रश्न पर समाज बिल्कुल मौन है ।

इस पृथ्वी पर एक जीवित शरीर के जन्म के साथ ही निर्दोष एवं पूर्ण रूप से शुद्ध, एक नई चेतना के रूप में दिव्यता का अवतरण होता है । और प्रथम दिन से ही इस जीवन पर बड़े लोगों द्वारा मानसिक प्रदूषणों का आरोपण प्रारम्भ हो जाता है । जब एक शुक्राणु अण्डाणु में प्रवेश करता है तब न शुक्राणु और न ही अण्डाणु ईसाई या हिन्दू या मुस्लिम या यहूदी होता है । यह तो केवल जीवन अर्थात् सर्वव्यापी चैतन्य का प्रस्फुटन होता है । तब निर्दोष शिशु यह निर्धारित नहीं करता कि वह एक ईसाई परिवार या यहूदी परिवार या मुस्लिम परिवार में जन्म लेगा । तब क्या उस शिशु को समझदारी की ऊर्जा के साथ तथा क्षुद्र अनुबन्धनों एवं उनके कारण उत्पन्न मानसिक प्रयत्नों से रहित, एक स्वतंत्र मानव के रूप में बड़ा होने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए ? एक ईसाई परिवार के जन्म लेने के कारण क्या उसे एक ईसाई ही बनाया जाना चाहिए या उससे भी अधिक, उसे एक ऑर्थोडॉक्स या कैथोलिक या प्रोटेस्टैंट या सेवेन्थ डे ऐडवेंटीस्ट या इवानजेलिस्ट या ऐसे ही किसी जीवन विरोधी समूह का सदस्य होना ही चाहिए? क्या इस जीवन को विराट जीवन में प्रस्फुटित होने या विकसित होने या सर्वव्यापी चैतन्य अर्थात् भगवत्ता को उपलब्ध होने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए? समाज में प्रारम्भ में ही भगवत्ता का नाश कर दिया जाता है ताकि वह भगवान के बारें में केवल अवधारणाओं की चर्चा करे और भगवान के बारे में भ्रांति और विकृति फैलाये । शिशु को जीवन के स्पर्श से वंचित किया जाता है ताकि वह मन के कारागार में कैद रहे । वह भगवत्ता को नहीं जान सके और भगवान के बारे में केवल उधारी जानकारी तक सीमित रहे, इस हेतु सब कुछ किया जाता है । इस तरह भगवत्ता के नाम पर केवल युद्ध, धर्मान्धता और नृशंसता को ही उत्पन्न किया जाता है । समाज और उसकी संस्कृति, नैतिकता और परम्पराओं को बनाने वाले मन की यह सब चालबाजी ही है ।

और इसीलिए जन्म के समय ही निर्दोषता एवं प्रज्ञा का पूर्ण रूपेण विनाश किया जाना जरूरी है । उसका बपतिस्मा किया जाना जरूरी है, उसका खतना जरूरी है, उसे बार–बार ''अल्लाह, अल्लाह, बिस्मिल्लाह, बिस्मिल्लाह'' सुनाया जाना जरूरी है या कोई संस्कृत या यहूदी मन्त्र के रूप में मूर्खतापूर्ण आरोपण जरूरी है । शिशु को जीवन–यात्रा का प्रारम्भ, भारी बोझ एवं भयंकर बन्धनों के साथ ही प्रारम्भ करना होता है । समाज द्वारा हर सम्भव यह प्रयास किया जाता है कि वह स्वयं को इस सम्पूर्ण पृथ्वी का एक सदस्य नहीं समझ सके और न ही स्वयं को एक अद्वितीय और वैश्विक घटना के रूप में जान सके। उसे केवल यही कहा जाता है कि वह एक रसियन या बुल्गारियन है, एक भारतीय या पाकिस्तानी है, एक ब्रिटिश या फ्रेंच या अमरीकी है ।

यदि राजनीति समझने एवं उसके बारे में निर्णय लेने के लिए न्यूनतम आयु १८ वर्ष है तो धर्म एवं भगवत्ता को समझने हेतु न्यूनतम आयु सीमा ३६ वर्ष क्यों नहीं तय की जानी चाहिए ? यदि राजनीतिक परिपक्वता १८ वर्ष पर आती है तबधार्मिक समझदारी के लिए ३६ वर्ष होना ही चाहिए । सभी मनुष्यों को

स्वतंत्रता में विकसित होने दिया जाय और उन्हें ३६ वर्ष की आयु के बाद ही किसी भी प्रकार के धार्मिक विचारों को समझने के योग्य समझा जाय । उसके बाद ही, उन्हें सत्य के बारे में उपलब्ध अवधारणाओं के चक्कर में फँसे बिना स्वयं के लिए स्वयं द्वारा सत्य की खोज करने दिया जाय ।

हमलोग मनुष्य जाति को विविधतापूर्ण समझें न कि आपस में विभाजित। व्यावहारिक कारणों से या फिर सन्दर्भ या पहचान के लिए हमलोग स्वयं को इटैलियन या कैथोलिक कह सकते हैं किन्तु इन सूचनाओं का पंजीकरण केवल तथ्यात्मक होना चाहिए, और इनके साथ मानसिक अवशेष एवं अवसाद नहीं होना चाहिए । इन मानसिक अवशेषों एवं अवसादों से ही मनुष्य जाति में विभाजन उत्पन्न होता है और फिर उसी से मारने एवं मरने की संस्कृति का जन्म होता है । धर्म या ग्रावाद के नाम पर किसी भी प्रकार की शत्रुता या मात्सर्य या द्वेष न हो । लोग ३६ वर्ष की आयु के बाद ही चर्चों, सिनागॉगों, मस्जिदों, मन्दिरों, गुरूद्वारों, मठों, बुद्ध–विहारों, जैन–केन्द्रों, आश्रमों आदि में जाएँ और स्वाध्याय (अर्थात् अन्तर्दुनियाँ में द्रष्टाविहीन दर्शन यानी कि द्वैत उत्पन्न हुए बिना दर्शन की क्रिया का होना) द्वारा अपने मूलभूत गुणों को जानकर, उन्हीं के अनुरूप एक या अधिक मार्गों को अपनाने के लिए वे स्वतंत्र हों ।

स्वतंत्रता पहले से बढ़ रही है । अब कई परिवारों एवं सामाजिक समूहों का अपने छोटे सदस्यों पर संकीर्ण राष्ट्रवादी एवं धार्मिक विचारों को थोपने में कोई रुचि नहीं रही है । किन्तु कट्टरता भी इस स्वतंत्रता के विरुद्ध सिर उठा रही है। मुझे बताया गया है कि एक नया आतंकी समूह अपना जाल फैला रहा है और उनके लोग अपनी संकीर्ण धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों के साथ घरों एवं विद्यालयों में जाकर बच्चों की मगज धुलाई करते हैं । कुछ युवक–युवतियों को धर्मयोद्धा के रूप में काम करने का प्रलोभन देकर समूह में शामिल कराया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि वैसी ही एक युवती कल के क्रियायोग कार्यक्रम में उपस्थित थी और उसके बाद शाम में वह अपने समूह की तरफ से एक दूरदर्शन–कार्यक्रम में भाग ले रही थी । वहाँ उसने कहा, ''मैं आज एक क्रियायोग कार्यक्रम में गई थी। वहाँ शिक्षक अत्यन्त दयालु और संवेदनशील थे किन्तु वे जो कुछ भी कह रहे थे, वह सब झूठ था । वे कह रहे थे 'किसी का अनुकरण–अनुसरण मत करो' । इसका अर्थ हुआ कि वे नहीं चाहते कि हमलोग बुल्गारियन के रूप में या ऑर्थोडॉक्स ईसाई के रूप में गर्व महसूस करें ।'' स्पष्ट है, वह न तो भाग ले रही थी और न ही सुन रही थी। वह केवल अपनी पूर्वधारणाओं एवं बाध्यताओं के अनुरूप ही उन बातों की व्याख्या कर रही थी ।

यह वक्ता कह रहा था : ''किसी का भी अनुकरण–अनुसरण मत करो, वक्ता का भी नहीं। अपना प्रकाश स्वयं बनो, यथार्थता की सजगता को उपलब्ध हो, यथार्थता के बारे में मान्यताओं एवं आरोपणों की अज्ञानता में मत फँसे रहो। मानव सम्बन्धों के किसी भी स्तर पर द्वन्द्व न हो, उसके लिए आवश्यक है कि शरीर (जीवन) विभाजन (मन) की गलाघोंटू पकड़ से मुक्त हो । राजनीतिज्ञ एवं पुरोहित तुम्हारे लिए स्वर्ग का वादा तो करते हैं किन्तु वस्तुतः वे तुम्हारे जीवन को नरक बना देते हैं ।'' इसीलिए संयोजक ने जब इस लड़की के बारे में बताया तो वक्ता स्तब्ध रह गया । और इस तरह, उद्घाटन के अवसर पर बोलने का विषय प्राप्त हुआ । ईश्वर को धन्यवाद है कि उस लड़की ने वक्ता में कुछ दया और संवेदनशीलता पाया । अन्यथा, उसने दूरदर्शन के कार्यक्रम में कहा होता कि वक्ता भारत के किसी सम्प्रदाय या पंथ से है और वह बुल्गारियन संस्कृति और धर्म को न करने का प्रयास कर रहा है ।

मानसिक पंजीकरणों एवं उनके अवशेषों के कारण ही दुविधा, द्वन्द्व, विभाजन और भ्रान्ति का जन्म होता है और उसी से हम विविधता के आनन्द से वंचित रह जाते हैं । समस्त मानसिक पंजीकरणों एवं उनके अवशेषों से मुक्ति सम्भव है किन्तु इस मुक्ति का आविर्भाव तब होता है जब मनुष्य की अन्तर्चेतना में द्रष्टा और दृश्य के बीच का मिथ्या द्वैत पूर्णतया समाप्त हो जाय । इस मिथ्या द्वैत की समाप्ति ही चैतन्य का उदय है, पुनर्जीवन है । तुम एक व्यक्ति विशेष नहीं हो यद्यपि तुम्हारा शरीर अद्वितीय है । तुम सम्पूर्ण मानवता हो । यह हमारी पृथ्वी है, न कि अमरीकी पृथ्वी या चाईनीज पृथ्वी । वृक्षों समेत सभी प्रकार के जीवन को हमारी पृथ्वी धारण करती है ।

इन शिक्षाओं एवं सन्देशों को ध्यानपूर्वक सुनें । इन्हें विचारों में परिवर्तित कर ''मैं'' का पुनर्निमाण न करें बल्कि इस ''मैं'' से मुक्ति के लिए इन सन्देशों को जीयें । ईसा मसीह या कृष्ण प्रक्रिया तब आपके अस्तित्व में घटेगी । आपको एक ईसाई या एक हिन्दू बनने के लिए उनके अनुकरण की आवश्यकता नहीं ।

श्रवण के लिए धन्यवाद ।

।। श्रोताओं की जय ।।